षष्ठ अध्याय

1- प्राण के दस भेद- प्राण, अपान, समान, व्यान,
उदान, नाग, कुर्म, कृकल, धनंजय और देवदत्त-
इनके द्वारा शक्ति और स्वास्थ्य का सम्पादन ।

2- शरीर के बाह्य एवं अन्तरंग संस्थानो का उन्नयन ।

3- वाम निलय में मल एकत्राकरण,
दक्षिण निलय द्वारा शुद्धिकरण
हृदय द्वारा शरीर में संचारण ।

षष्ठ अध्याय

प्राण के दस- भेद प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल धनजंय और देवदत्त-इनके द्वारा शक्ति और स्वास्थ्य का सम्पादन, शरीर के बाह्य एवं अन्तरंग संस्थानों का उन्नयन आदि ।

प्राण के दस भेद

समग्र जगत् में जो ऊर्जा शक्ति व्याप्तहै, उसी का नाम "प्राण" है । जगत् में जितनी भी शक्तियाँ व्याप्त हैं, उनकी समष्टि को प्राण कहते हैं । कल्प के आरंभ में यह प्राण एक प्रकार बिल्कुल गतिहीन अवस्था में रहता है । और कल्प के प्रारंभ होने पर वह फिर से व्यक्त होना आरंभ करता है । यह प्राण ही गति के रूप में मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियों में स्नायविक गति के रूप में प्रकाशित होता है । यह सम्पूर्ण संसार इस प्राण एवं आकाश की समष्टि है । व्यापक रूप में "प्राण" ज्ञानेन्द्रिय या चेतना को प्रकट करता है । "प्राण" शब्द कभी कभी केवल श्वास का साधारण अर्थ बोध कराता है, किन्तु इसका उचित अर्थ श्वास का आदान-विसर्जन है ।

जिस आन्तरिक सूक्ष्म शक्ति द्वारा दृश्य जगत में जीवात्मा का देह से संबंध होता है, उसे प्राण कहते हैं ।

मनुष्य के शरीर में वृत्ति के कार्य भेद से, इस प्राण को दस भिन्न भिन्न नामों से अभिहित किया गया है- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनजंय ये दस प्रकार के प्राण वायु हैं ।

प्राण- श्वास-प्रश्वास को अन्दर-बाहर ले जाना मुख और नासिका द्वारा गति करना, अन्न जल को पचाकर अलग करना, अन्न को पुरीष्ठ जल को पसीना व

मूत्र तथा रसादि को वीर्य बनाना प्राण वायु का कार्य है । यह शरीर के ऊपरी भाग में, हृदय से नासिका पर्यन्त विद्यमान है । ऊपरी इन्द्रियों का कार्य इसी के अधीन है। यह प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है । वह परब्रह्म परमेश्वर ही इसका उपादान कारण है। वह इसकी रचना करने वाला है, अतः इसकी स्थिति उस सर्वात्मा महेश्वर के अधीन उसी के आश्रित है- ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार किसी मनुष्य की छाया उसके अधीन रहती है । यह प्रश्न मन द्वारा किये हुए संकल्प से किसी शरीर में प्रवेश करता है। भाव यह है कि मरते समय प्राणी के मनमें उसके कर्मानुसार जैसा संकल्प होता है उसे वैसा ही शरीर मिलता है । अतः प्राणों का शरीर में प्रवेश मन के संकल्प से ही होता है ।

अपान-

प्राण स्वयं तो मुख और नासिका द्वारा विचरता हुआ नेत्र और श्रोत्र में स्थित रहता है, तथा गुदा और उपस्थ में अपान को स्थापित करता है । अपान वायु का कार्य मल मूत्रादि को बाहर निकालना है । यह नीचे की ओर से गतिशील तथा नाभि से पादतल पर्यन्त विद्यमान है । निचली इन्द्रियों का कार्य इस पर आश्रित है ।

समान-

समान वायु का कार्य पचे हुए रसादि को समस्त अंगो एवं नाड़ियों में अनुपातपूर्वक विभाजित करना है । यह शरीर के मध्य भाग अर्थात नाभि से हृदय तक स्थित है । यह समान वायु ही प्राणरूप अग्नि में हवन किये हुए उदर में डाले हुए अन्न को अर्थात् उसके सार को सम्पूर्ण शरीर के अंग प्रत्यांगों में यथायोग समभाव से पहुँचाता है । उस अन्न के सारभूत रस से ही इस शरीर में ये सात ज्वालायें अर्थात् समस्त विषयों को प्रकाशित करने वाले दो नेत्र, दो कान, दो नासिकायें और एक मुख (रसना) ये सात द्वार उत्पन्न होते हैं, उस रस से पुष्ट होकर ही ये अपना अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं । समान नामक प्राणशक्ति शरीर में जठराग्नि को आवृत करके स्थित है । इसी के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में यथोचित पोषण सम्पन्न होता है । अतः सम्पूर्ण शरीर में अन्न रस का समन्वय करने के कारण

इसकी समान संज्ञा है। समान द्वारा आवृत रहने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। अतः शरीर में तेजोवृद्धि नहीं हो पाती है। पोषण की रसायनिक क्रिया द्वारा शारीरिक धातुओं में दीप्ति बढ़ती है। संयम द्वारा समान प्राण को जीत लेने पर वह स्ववश हो जाता है और इच्छानुसार जठराग्नि की भी निरावृत्ति हो जाती है। अतः समान वे निरावृति होकर, उत्तेजित जठराग्नि पोषणोत्कर्ष के साथ साथ और अधिक उद्दीप्त होती हुई योगी के शरीर को तेजस्वी बनाती है। योगी के शरीरान्तर्वर्ती इन तेज की सम्यक् अभिव्यक्ति होने पर यह शरीर के बाहर भी फूट निकलता है जिससे योगी की देह अपूर्व कान्ति एवं दीप्ति से सम्पन्न दृष्टिगोचर होने लगती है। समान की तेजोवृद्धि से ही हृदयादि की सब इन्द्रियाँ पूर्णतया विकसित एवं ऊर्ध्वमुख होते हैं।

व्यान-
----- इसका मुख्य स्थान उपस्थमूल से ऊपर है। इस शरीर में जो हृदय प्रदेश है, जो जीवात्मा का निवासस्थान है उसमें एक सौ मूलभूत हैं, उनमें नाड़ी की एक सौ शाखा नाड़ियाँ हैं और प्रत्येक शाखा नाड़ी की बहत्तर-बहत्तर हजार प्रतिशाखा नाड़ियाँ हैं उनमें व्यान वायु विचरण करता है। इस प्रकार व्यान समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म नाड़ियों में गतिपूर्वक शरीर के सब भागों में रक्त संचार करता है।

उदान-
----- यह कण्ठदेश में स्थित रहकर शिर पर्यन्त गति करता है। देह का उठाये रखना इसका कार्य है। इसी के द्वारा शरीर के व्यष्टि प्राण का समष्टि प्राण से संबंध है। उदान वायु से ही मृत्युकाल में, सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से बाहर निकालना तथा सूक्ष्मशरीर के कर्म, गुण और वासनाओं के अनुसार गर्भ में प्रवेश करता है।

बहत्तर करोड़ नाड़ियों से भिन्न एक और नाड़ी है, जिसको सुषुम्ना कहते हैं जो हृदय से निकलकर ऊपर की ओर विचरण करता है, जो मनुष्य पुण्यशील होता है, जिसके शुभकर्मों के भोग उदय हो जाते हैं, उसे यह उदान वायु ही अन्य सब प्राण और इन्द्रियों के सहित वर्तमान शरीर से निकालकर पुण्यलोकों में अर्थात्

स्वर्गादि उच्च लोकों में ले जाता है। पाप कर्मों से युक्त मनुष्य को शूकर-कूकर आदि पाप योनियों में और रौरवादि नरकों में ले जाता है, तथा जो पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्मों का मिश्रित फल भोगने के लिए अभिमुख हुए रहते हैं उनको मनुष्य शरीर में ले जाता है।

रसादि के ऊर्ध्वमुख उन्नयन करने से ही इसकी उदान संज्ञा है। व्यष्टि एवं समष्टि प्राण का संयोजक यही उदान वायु है। शरीर को ऊपर की ओर उठाये रखना भी इसका एक मुख्यकार्य है। मृत्युकाल में सूक्ष्म शरीर उदान द्वारा ही स्थूल शरीर से बहिर्गमन करता है। उदान शरीरान्तर्वर्ती धातुगत बोध के अधिष्ठानस्वरूप स्नायु को धारण करने वाली प्राणशक्ति है। उक्त बोध इन्द्रियों के द्वार से ऊर्ध्व मस्तिष्क पर्यन्त उठते हैं। अतः इस ऊर्ध्वप्रवाह में संयम करने पर तथा देहवर्ती समस्त धातुओं में प्रकाशशील सत्व के ध्यानपूर्वक उदान जीतने पर, शरीर में लघुत्व प्रादुर्भूत होता है। यही कारण है कि उदानजयी का शरीर रूई की भाँति हल्का हो जाने के कारण जल में डूब नहीं सकता तथा काटों अथवा तलवार की धार पर सुखपूर्वक चल सकता है। वे उसे छेद नहीं सकते। जिस प्रकार वह सामान्य रीति से रम्य भूतल पर विचरण करता है, उसी प्रकार जल, पंक, कटकादि के ऊपर भी सुखपूर्वक विचर सकता है। यह उदान का ऊर्ध्वगामिनी प्राण शक्ति है। अतः सुषुम्ना गत उदान को संयम द्वारा स्ववश कर लेने पर देवयान या अर्चिरादि मार्गों। पितृयान और देवयान द्वारा इच्छानुसार ब्रह्मलोक आदि लोकों में ऊर्ध्वगति होती है। इससे उसका संसार में पुनरावर्तन नहीं होता है। पुनरावर्तन शून्य ही उत्क्रान्ति कहलाती है।

शेष पाँच वायुओं में नागवायु उद्गार अर्थात् डकारने आदि कूर्मवायु निमीलन संकोचन कार्य कृकल वायु, क्षुधा, तृषा कार्य करता है और धनंजय पोषण इत्यादि तथा देवदत्त जृम्भण निद्रा आदि का कार्य करता है किन्तु इन दोनो में पूर्वोक्त पंचप्राण ही मुख्य है। बाद में कहे गये नाग, कूर्मादि प्रथम पाँच अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान के ही अन्तर्गत है इनका वर्णन ग्रन्थों में इस प्रकार है-

निश्वासोच्छ्वास का साश्य प्राणकर्मेति कीर्तिता ।
अपानवायोः कर्मैतद् विण्मूत्रादिविसर्जनम् ।।
हानोपादानचेष्टादिव्यान कर्मेति चेष्यते ।
उदानकर्मतत्प्रोक्तं देहस्योन्नयनादि यत् ।।
पोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्तितम् ।
उद्गारादिगुणों यस्तु नागकर्मेति चोच्यते ।
निमीलनादिकूर्मस्य क्षुत वै कृकलस्य च ।
देवदत्तस्य विप्रेन्द्र तन्द्रीकर्मेति कीर्तितम् ।।
धनंजयस्य शोकादिसर्वकर्मप्रकीर्तितम् ।। ‡योगियाज्ञवल्क्य 4/66/69‡

हृदिप्राणीवसेन्नित्यमापानो गुह्यमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यमः ।।
व्यानो व्यापी शरीरे तु प्रधानाः पञ्चवायवः ।।‡गोरक्षसंहिता-30‡

इस दृश्य संसार के समस्त पदार्थों के दो भेद किये जा सकते हैं, जिनमें प्रथम बाह्यांश एवं द्वितीय आन्तरांश है। इनमें आन्तरांश सूक्ष्म शक्ति प्राण है एवं बाह्यांश जड़ है । यह अंश बृहदारण्यकोपनिषद में भी निर्दिष्ट है । इसी विषय को बृहदारण्यकभाष्य और भी स्पष्ट कर देता है । यथा - कार्यात्मक जड़ पदार्थ नाम और रूप के द्वारा शरीरावस्था को प्राप्त करता है, किन्तु कारणभूत सूक्ष्म प्राण उसका धारक है । अतः यह कहा जा सकता है कि यह सूक्ष्म प्राणशक्ति ही एकत्रीभूत स्थूल शक्ति ‡शरीर‡ के अन्दर अवस्थित उसकी संधारिका है।

इस सूक्ष्म शक्ति प्राण के द्वारा ही पंचीकरण से पृथ्वी, जल, अग्नि आदि स्थूल पंचमहाभूतों की उत्पत्ति है । इसी सूक्ष्म प्राणशक्ति की महिमा से अणु परमाणुओं के अन्दर आकर्षण-विकर्षण द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति दशा में सूर्य और चन्द्रमा से लेकर समस्त ग्रहउपग्रह आदि अपने अपने स्थानों पर स्थित रहते हैं ।

समस्त जड़ पदार्थ भी इसी के द्वारा कठिन तरल अथवा वायवीय रूप में अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार अवस्थित रह सकते हैं । इस प्रकार इस समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि और स्थिति के मूल में, सूक्ष्म प्राण-शक्ति का ही साम्राज्य है ।

प्राणशक्ति की उत्पत्ति परमात्मा की इच्छाशक्ति रूप से ही मानी जाती है, जो समष्टि और व्यष्टि रूपों से व्यवहृत है क्योंकि यह समस्त परमेश्वर के संकल्पमात्र से प्रसूत के अन्तःतदन्तर्वर्तिनी प्राणशक्ति भी परमेश्वर की इच्छा से उद्भूत हैं ।

इसी प्रकार सूर्य चन्द्र आदि के माध्यम से सृष्टि का विकास एवं ऋतु संचालन और उनका परिवर्तन आदि प्राणशक्ति के द्वारा ही होता है । सूर्य के साथ समष्टि भूत प्राण का संबंध होने पर ऋतु परिवर्तन, सस्यसमृद्धि का विस्तार एवं संसार की रक्षा तथा प्रलयादि सभी कार्य समष्टि प्राण की शक्ति से ही सम्पन्न होते रहते हैं । प्राण की इस पराधारिणी शक्ति को छान्दोग्योपनिषद् अधिक स्पष्ट कर देती है । यथा जिस प्रकार रथचक्र की नाभि के ऊपर चक्रदण्ड (अरा) स्थित रहते हैं उसी प्रकार प्राण के ऊपर समस्त विश्व आधारित रहता है । प्राण का आदान प्रदान प्राण द्वारा ही होता है । प्राण पितृवत् जगत् का जनक, मातृवत् संसार का पोषक, मातृवत् समानता का विधायक, भगिनीवत् स्नेह संचालक एवं आचार्यवत् नियमकर्ता है ।[1]

जिस प्रकार एक सम्राट् अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को विभिन्न ग्राम, नगर आदि स्थानों पर स्थापित कर उनके द्वारा उन उन स्थानों का शासन कार्य करता है उसी प्रकार प्राण भी अपने अंश से उत्पन्न व्यष्टिभूत प्राणों को जीव शरीर के विभिन्न स्थानों पर प्रतिष्ठित कर शरीर विविध कार्यों का संचालन करता है ।

1- वैदिक निबंधावली, पृ० 77-आचार्य मुंशीराम शर्मा.
प्रश्नोपदीय प्राणविद्या।प्रश्नोपनिषद्-, वैदिक धर्मकोष- राजबली पाण्डेय.

इस प्रकार यह सब प्राणशक्ति की क्रियाकारिता का ही परिणाम है, जिसके ऊपर चराचर जगत् का विकास आधारित है ।[1]

इस प्रकार प्राण के द्वारा ही शरीर का निर्माण एवं विकास होता है । प्राणशक्ति के अभाव में अन्य किन्हीं साधनों द्वारा शरीर का निर्माण एवं विकास कभी भी संभव नहीं है । यहां प्राणशक्ति शरीर को धारण करती है अतः इसे पुरन्धि भी कहा जाता है । शरीर पुर है इसका आधार प्राण है । पुरन्धि शरीर रूपी पुर की धारिका है । प्राण शक्ति से ही शरीर टिका है। प्राण के रहते ही साधन का प्रयोग हो सकता है प्रयत्न किया जा सकता है, उत्थान की ओर बढ़ा जा सकता है । प्राणशक्ति प्राणी का सर्वस्व है । यह प्राणशक्ति की ही महिमा है वह शरीर के निर्माण एवं विकास में पूर्ण सहयोग करती है । जगत् में सर्वत्र प्राण की शक्ति ही दृष्टिगोचर हो रही है । इसी के द्वारा चराचर जगत् संचालित है । चराचरात्मक जगत् के जिस अंश से प्राण की शक्ति या प्राणवायु पृथक् हो जाती है वह अंश नष्ट हो जाता है । प्राणशक्ति के अभाव में शरीर निर्जीव निर्वीर्य एवं स्पन्दन शून्य हो जाता है, यहाँ तक कि प्राणों से रहित शरीर को सुरक्षित रख सकना असंभव हो जाता है ।

इसी प्रकार अचर जिस वृक्षादि से उनकी प्राण शक्ति पृथक् हो जाती है वह सूखकर विनष्ट हो जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणशक्ति की महिमा अद्वितीय है । उसी के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् प्रपंच संचालित हो रहा है । प्राण वह शक्ति है जिसमें चराचर जगत् प्रतिष्ठित है । यह प्राण ही प्रकृति से जगत् की रचना करता है और जगत् के कार्य संपन्न करता है । शरीर में इन्हीं प्राणों की द्वारा फेफड़ों की गति सम्भव है । फेफड़े अपना कार्य इन्हीं प्राणों द्वारा ही करते हैं । शरीर में प्राण अपान वायुएँ और हृदय की गति भी इसी प्राणशक्ति के द्वारा चल रही है । चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, त्वचा और रसना ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं । इन्हीं कारण माना है इनमें प्राण है ।

1-वेदार्थ चन्द्रिका, आचार्य मुंशीराम शर्मा, पृ0 248

वस्तुतः, प्राण कोई पदार्थ नहीं है । यह शक्ति है, यह उस शक्ति का अंग है जिससे परमात्मा इस जगत् में गति उत्पन्न करता है ।

इस चराचरात्मक जगत् के जिस अंश से प्राण की शक्ति या प्राणवायु पृथक् हो जाती है वह अंश नष्ट हो जाता है । प्राणशक्ति के अभाव में शरीर निर्जीव निर्वीर्य एवं स्पन्दन शून्य हो जाता है । यहाँ तक कि प्राणों से रहित शरीर को सुरक्षित रख सकना असंभव हो जाता है। इसी कारण अचर जिस वृक्षादि से उसकी प्राणशक्ति पृथक् हो जाती है वह विनष्ट हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणशक्ति की महिमा अद्वितीय है उसी के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् प्रपंच संचालित हो रहा है । इस प्राण के प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पाँच मुख्य भेद हैं । इनमें से प्राण प्राणशक्ति के संचालक हैं इसके बिना प्राणों का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है । इस शक्ति के प्रतिष्ठित होने से ही शरीर में चेतनता आती है और मनुष्य उसके द्वारा संचालित होकर विभिन्न प्रकार के क्रिया कलापों में संलग्न होता है । प्राणशक्ति शरीर के अन्दर प्रतिष्ठित होती हुई, शरीर को स्थिति प्रदान करती हुई शक्ति प्रदान करती है । यह हृदय प्रदेश में स्थित होकर शरीर के आन्तरिक सूक्ष्मतक हृदय संस्थान की रक्षा करती है । हृदय के प्रतिष्ठापन एवं उन्नयन में यही कारण रूप में अवस्थित है । यह शरीर के प्रमुख संस्थान हृदय में अधिष्ठित होती हुई शरीर के आन्तरिक भागों का विकास करती है । अपान वायु गुदा भाग में स्थित होकर शरीर की परिशुद्धि करती है । इसी की शक्ति द्वारा शरीर के लिए मल मूत्रादि तत्व बाहर निर्गत होते हैं । यह आन्तरिक सूक्ष्मता अवयवों के उन्नयन का कारण होता है । समान वायु नाभिमण्डल में स्थित रहती हुई वहाँ के महत्वपूर्ण संस्थानों का उन्नयन करता है । उदान वायु कण्ठ प्रदेश में स्थित होकर वहाँ के सूक्ष्मतम संस्थानों का उन्नयन एवं संरक्षण करता है । व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहते हुए आन्तरिक सूक्ष्म अवयव संस्थानों की रक्षा एवं उनका उन्नयन करता है ।

यही प्राण आदि वायु शरीर के आन्तरिक भागों को पुष्ट करता हुआ समस्त बाह्य विभागों के उन्नयन का कारण रहता है । इससे अनुप्राणित शरीर के

सभी अंग प्रत्यंग संचारित होते हैं । अपान वायु गुदादि अवयव संस्थानों के बाह्य एवं स्थूल संस्थानो का उन्नयन करता है । समान वायु नाभि प्रदेश का उन्नयन करता है । समान वायु नाभि प्रदेश के आन्तरिक एवं बाह्य अवयव संस्थानो का उन्नयन करता है । कण्ठ और उसके पार्श्ववर्ती एवं विकास में उदान वायु सम्प्रवृत्त होती है ।

विभिन्न उच्चारणोपयोगी अवयव संस्थानो के सूक्ष्म एवं स्थूल रूपों के उन्नयन का यही कारण है । व्यान वायु शरीर के सभी भागों में अभिव्यक्तरहता हुआ सूक्ष्म एवं स्थूल अवयव संस्थानो के उन्नयन का कार्य करता है । यही श्रोत्र, त्वक, चक्षु जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ और मन इस इन्द्रिय समूह के उन्नयन के कारण हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह प्राण शक्ति ही अपने सहयोग अपान आदि के द्वारा शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक अवयव संस्थानो के उन्नयन एवं विकास में कारण के रूप में प्रतिष्ठित है ।

वामनिलय में मल एकत्रीकरण दक्षिण निलय द्वारा शुद्धीकरण

हृदय द्वारा शरीर में संचरण

शरीर के संचालन का कार्य प्राणवायु करता है। शरीर को शक्ति प्रदान करने और उसे संचालित करने के लिए भोजन, जल, वायु आदि की अपेक्षा आवश्यक है इनके अभाव में शरीर का संचालन कदापि संभव नहीं है। भोजन, जल और वायु आदि तत्व जीवनी शक्ति प्रदान करते हुए शरीर के संचालन में महत्वपूर्ण या यों कहिये कि अनिवार्य भूमिका का निर्वाह करते हैं। भोजन, जल एवं वायु जीवन की रक्षा हेतु उत्तरोत्तर आवश्यक हैं। तात्पर्य यह है कि शरीर की जीवन शक्ति के लिए भोजन की अपेक्षा जल महत्वपूर्ण है और जल की अपेक्षा वायु। कोई व्यक्ति भोजन के बिना अधिक समय तक जीवित रह सकता है जल पिये बिना उसे कम समय तक जीवित रह सकता है और वायु के बिना उससे भी कम समय तक जीवित रह सकता है। अतः शरीर में प्राणशक्ति के संचालन के लिए इनतीनों की अनिवार्य आवश्यकता है। इन्हीं से ऊर्जा प्राप्त करके मानव शरीर अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है। इनके बिना उसका शारीरिक संरक्षण कदापि संभव नहीं है। शारीरिक संरक्षण के साथ ही साथ ये तत्व शरीर विकास के भी कारक हैं। यहाँ यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि शरीर में भोजन, जल और वायु से केवल पोषक तत्वों को आत्मसात् कर अन्य उपयोगी स्थूल तत्व को पृथक् कर देता है। सारभूत तत्व या रस को ग्रहण कर शरीर में आत्मसात् कर लेता है और साररहित मलादि तत्वों को पृथक् कर देता है। शरीर के अन्दर प्रस्तुत हुए जल आदि वायु से सारतत्व को निकालकर शरा के साथ मिला देना और मल को पृथक् करने का कार्य भी प्राणादि वायु ही करते हैं। ये भोजन, जल और वायु में से शरीर के लिए उपयोगी तत्वों को ग्रहण कर उसे शरीर में सम्पृक्त करते हैं और मल आदि को पृथक् कर वामनिलय में एकत्रित करते हैं। वामनिलय में एकत्रित मलादि को दक्षिण निलय से सम्पृक्त वायु उसे बाहर निकालता है और शरीर के आन्तरिक अवयव संस्थानों को परिशुद्ध करता

है । इस प्रकार दक्षिण निलय के द्वारा यह शुद्धीकरण अर्थात् की प्रक्रिया चलती रहती है । इससे परिशुद्ध हुए समस्त अवयव संस्थान अपने अपने कार्य करते रहते हैं । अशुद्ध या दूषित मलादि के निःसृत हो जाने से शरीर हल्का और स्वस्थ हो जाता है तथा उसके स्थायित्व में वृद्धि होती है । जब किसी कारणवश यह मल शरीर के बाहर नहीं निकल पाता है तो ऐसी स्थिति में शरीर में अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देता है। जिससे शरीर शनैः शनैः क्षीण होने लगता है और मल के विषाक्त कीटाणुओं के शरीर में अभिव्याप्त हो जाने से शरीर जर्जरित हो जाता है और धीरे धीरे नष्ट हो जाता है अतः वामनिलय में मल का एकत्रीकरण और उसका बहिनिःसारण शारीरिक विकास के लिए अत्यावश्यक है ।

परिशुद्ध शरीर में प्राण, अपान, समान व्यान और उदान ये पाँचों वायु विधिवत् संचरण करते हुए शरीर का सर्वविध विकास एवं पोषण करते हैं । इनमें हृदय द्वारा शरीर में संचरण करता हुआ प्राण वायु ही प्रधान है । इसकी मुख्य स्थिति हृदय में है । यह हृदय को स्वच्छ और शक्तिसम्पन्न करता हुआ उसे ऐसी विशिष्ट ऊर्जा प्रदान करता , जिसके द्वारा संरक्षित हृदय संस्थान परिपुष्ट होकर आन्तरिक शक्ति का विकास तो होता है साथ ही वह शक्ति ग्राह्य अवयवों को संरक्षित करती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य संरक्षण के लिए प्राणवायु और उसके अपान आदि भेद सर्वथा आवश्यक है ।